P.U.
SEM-II
Paper 9

डा० कुमारी चम्पा
हिन्दी विभाग
महाराजा कॉलेज
Date

बाणभट्ट की आत्मकथा

(व्याख्या) पृष्ठ सं०-65

"जब तक तुम पुरुष और स्त्री का भेद नहीं भूल जाते, तब तक तुम अधूरे हो, अपूर्ण हो, आसक्त हो। तुम और मैं का भेद तब तक तुमसे निरंतर चिपका रहेगा अतः तुममें नैरात्म्य भावना की प्रवृत्ति होगी, तो शक्ति के बिना भी साधना चल सकती। तुममें वह प्रवृत्ति नहीं है। पर मैं अपनी ओर से यह साधना तुम्हारे सिर लादना नहीं चाहता। तुम्हारी रुचि हो तो स्वीकार करो। देखो, न तो प्रवृत्तियों को छिपाना उचित है, न उनसे डरना कर्तव्य और न लज्जित होना युक्तियुक्त है।"

व्याख्येय गद्यांश बाणभट्ट की आत्मकथा से उद्धृत है। उपन्यासकार हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ~~यहाँ~~ यहाँ अघोरभैरव द्वारा बाणभट्ट से सच्चे साधक के महत्व पर विचार व्यक्त कराया है।

अघोरभैरव बाणभट्ट को समझाते हैं कि मनुष्य जिसे हृदय से चाहता है वही उसका देवता है और इसलिए उसे अपने उसी देवता की आराधना करनी चाहिए। इसी बीच अपने एक शिष्य विरतिवज्र को उपदेश देते हुए उनका कहना है कि जो प्रवृत्तियाँ उनमें है उनके अनुसार उसने बौद्ध धर्म की दीक्षा लेने का विचार छोड़कर और कौलमार्ग अपनाने हेतु अघोरभैरव के पास आकर अच्छा ही किया। इसी प्रसंग में वे कहते हैं।

विरतिवज्र तुमने सन्यास अवश्य ले लिया है, किन्तु अभी तुम आसक्तियों से मुक्त नहीं हो पाए हो। कोई भी साधक तब तक सन्यास से निलिप्त नहीं हो सकता जब तक उसके मन में स्त्री और पुरुष, मैं और तुम का भेद बना रहता है।

Date

साधक बनने के लिए उसे इन दोनों के भेद को मिटा देना होगा, अन्यथा वह ढोंगी है। वह संन्यास का बाह्याडंबर तो तोड़ सकता है किन्तु संन्यास की पूर्णता नहीं पा सकता और इसलिए वह अपने पथ का एक अशक्त पथिक ही बना रहता है। यदि तुममें सांसारिक भोग लिप्सा से निर्लिप्त रहने की शक्ति होती तो तुम्हें साधना के लिए किसी अन्य शक्ति की आवश्यकता न थी। किन्तु तुम अपने मन में अभी तक उस भावना को नहीं ला पाए हो। यह कार्य तुम्हें स्वयं करना होगा। मैं अपनी ओर से तुम पर इस भावना को नहीं लादना चाहता क्योंकि जब तक मन निष्काम नहीं तब तक उसमें विभेद की स्थिति है, तब तक कोई भी शक्ति तुम्हें साधक बनाने में समर्थ नहीं हो सकती। यदि तुम्हारी इस मार्ग में रुचि है तो स्वयं ग्रहण करो। मैं तुम्हें यह बता देना चाहता हूँ कि साधक को अपने मन की भावनाओं को प्रकट कर देना चाहिए, उन्हें छिपाए रखना उचित नहीं है। न उन भावनाओं से डरना तुम्हारा कर्त्तव्य है और अपनी भावनाओं से लज्जित होना भी ठीक नहीं है। प्रत्येक भावना ईश्वरीय है अतः उनका प्रकटीकरण करके निर्भयतापूर्वक अपने ईश्वर को स्वीकार कर लेना ही सर्वोत्तम है अन्यथा मन में कुण्ठाएँ जमती रहेंगी और साधना सफल नहीं हो सकेगी।

अघोरेश्वर की दृष्टि में साधक का निर्भय होना और अपने कृत्य को छिपाने की अपेक्षा उसी को देवता मानकर सबके सामने करना, सबसे बड़ी साधना है क्योंकि तब सत्य उजागर हो उठता है। इसलिए अघोरेश्वर ने स्थान-स्थान पर इस विषय में निर्भयता को महत्व देते हुए कहा है कि डरना किसी से भी नहीं, गुरु से भी नहीं, ईश्वर से भी नहीं, मंत्र से भी नहीं। मनुष्य की प्रत्येक प्रवृत्ति ईश्वरमय है इसलिए इसे छिपाना क्या, यही तो साधक की शक्ति है